विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. 30/-
आजीवन शुल्क रु. 500/-

बुद्धवर्ष 2558, चैत्र पूर्णिमा, 4 अप्रेल, 2015 वर्ष 44 अंक 10

For Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

साहु दस्सनमरियानं, सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं, निच्चमेव सुखी सिया॥
२०६, धम्मपदपाळि, सुखवग्गो

आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों) का दर्शन अच्छा होता है, संतों के साथ निवास सदा सुखकर होता है। मूढ़ (पुरुषों) के अदर्शन से सदा सुखी बने रहो।

सही माने में आर्य बना

म्यंमा, बर्मा, ब्रह्मदेश या स्वर्णभूमि उस देश का नाम है, जहां मेरा जन्म हुआ। राजधानी यांगों (रंगून) से उत्तर लगभग १४८ मील दूर एक स्थान है जियावाड़ी। इसके उत्तर-पश्चिम में शिरीष, नारियल, आम, पीपल और बरगद आदि के हरे-भरे वृक्षों से आच्छादित, हरीतिमा-युक्त शीतल शांत वातावरण में स्थित एक छोटा-सा गांव ''न्योविंदा'' अर्थात पीपल-वृक्ष वाला गांव है, जहां मेरा बचपन बीता। गांव के पूर्व थोड़ी दूर पर रंगून-मांडले सड़क तथा लगभग समानांतर चलती रेलवे लाइन। दूर तक फैले सपाट मैदान के पार क्षितिज को छूता ''करेनी योमा'' पर्वत! यहीं बाल-सूर्य की लालिमा को निहारा करता। प्रत्यूष का थका हुआ सांध्यकलीन सूर्य गांव के पश्चिम करीब दो-तीन मील की दूरी पर स्थित ''पेगूयोमा'' पर्वत के पीछे छुप जाता, जिसके दक्षिणी छोर पर रंगून में विश्वविख्यात 'श्वेडगोन' पगोडा है।

इस गांव के पश्चिम थोड़ी दूरी पर करीब चालीस-पचास परिवारों वाला एक छोटा-सा मूल बर्मी जाति के लोगों का गांव, मानो मखमल की हरी चादर ओढ़े नवोढ़ा (लज्जालु दुलहन) जैसे चुपचाप बैठा हो। दोनों गांवों के बीच मेरी कृषि-भूमि, उसके पास एक अति पावन, निर्मल, 'बुद्ध विहार', जहां नित्य प्रातःकाल बरमी ध्वनि मुखरित होती--

'नमोत्त बगवाटो अरहाटो तम्मा तम्बुद्धत्त!' अर्थात-

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स!

मैं सातवीं कक्षा में था, जो नौवीं के समकक्ष होती। इन्फैंट ए तथा बी के बाद पहली कक्षा शुरू होती और सातवीं बोर्ड-परीक्षा की कक्षा होती, जिसके लिए स्वाध्याय की छुट्टी थी। मैं गांव के निकट उक्त विहार में गया और वहां के बड़े भिक्षु से मिला। स्वाध्याय के लिए उनसे एक कमरे का निवेदन किया। उन्होंने एक छोटी-सी लगभग ५x५ फीट की कुटिया, जो ऐसे एकांत स्थान पर थी जहां जाकर मन स्वतः शांत हो जाय, उसमें अध्ययन करने की अनुमति दी। वह कुटीर उनका अपना ध्यान-कक्ष था। बांस से बने कलापूर्ण नितांत नीरव उस कक्ष का उपयोग उन भिक्षुप्रवर के सिवाय अन्य कोई नहीं करता था। परंतु पता नहीं क्यों उन्होंने अतिशय कृपा करके मुझे उसमें पढ़ने की अनुमति दे दी।

सातवीं कक्षा में जितनी बुद्धि थी और माता-पिता, गांव-घर तथा जियावाड़ी में बसे हुए बीस-बाईस हजार भारतीय लोगों की परम्परागत मान्यता से यही समझ बनी थी कि हम भारतीय सर्वश्रेष्ठ होते हैं और बर्मी लोग निम्न। उनका खान-पान मांसाहारी है और हमारा शुद्ध सात्त्विक शाकाहारी। कुल मिलाकर 'वे हेय और हम उच्च'-- इसी कुत्सित मानसिकता से सभी भारतीय ग्रस्त थे।

मेरे गांव के लोग अपेक्षाकृत उनसे धनी थे। हम सब के पास कुछ-न-कुछ कृषि-योग्य भूमि थी, जबकि बर्मी परिवारों में से किसी-किसी के पास ही जमीन थी। भिक्षु की उस कुटिया में स्वाध्याय करते समय मेरे मन में द्वंद्व उठा कि इस बर्मी गांव के लोग इतने गरीब हैं, फिर भी इन्होंने इतना बढ़िया साफ-सुथरा भव्य बौद्ध विहार बनवाया है। मांडले से संगमरमर की गौतम बुद्ध की चमचमाती हुई मूर्ति लाकर स्थापित की है। गांव के बालक यहां पढ़ते हैं, विहार में ही रहते हैं, दिन-रात अध्ययन करते हैं। प्रातः चार साढ़े-चार बजे से रात्रि नौ साढ़े-नौ बजे तक इनकी दिनचर्या निश्चित है। ये भिक्षु भी कितने शांत और निर्लिप्त हैं। दोपहर के पूर्व भिक्षाटन से प्राप्त भोजन पर निर्भर। बर्मी गृहस्थ लोग माह में चार बार (दोनों पक्षों की अष्टमी, अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन) यहां आकर उपोसथ-व्रत रखते हैं। इसके ठीक विपरीत मेरे गांव की पूर्व दिशा में एक 'कालीमाई का चौरा' तथा उसी के साथ एक 'भैरव बाबा का पिंड', थोड़ा हट कर 'हनुमानजी का प्रतीक एक पिंड', उससे थोड़ी दूर पर 'ग्राम देवता का पिंड'। कुल मिलाकर सब कुछ अत्यंत संकुचित और अनाच्छादित स्थान, झाड़-झंखाड़ से भरपूर, रख-रखाव से अति दूर। वर्ष में कोई तीज-त्योहार पर लोग जाकर पूजन-अर्चन कर लें, प्रसाद चढ़ा दें। उसके बाद तो वहां केवल जीव-जंतुओं का ही साम्राज्य। इन सब के बावजूद हम अपने आपको महान एवं उच्च मानते हैं और बर्मी जाति के लोगों को निम्न तथा गया-गुजरा क्यों समझते हैं?

उच्च शिक्षा का अवसर

जब तक मौलमीन कॉलेज जाने का अवसर आया, तब तक मैं 'हिंदी साहित्य सम्मलेन', प्रयाग की 'साहित्य-विशारद' परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। अब तक सनातन धर्मावलंबी परिवार के कर्मकांडों से मोह भंग हो चुका था। आर्य समाज की बातें जँचने लगी थीं। रेलगाड़ी से पेगू होते हुए मौलमीन गया। उस रास्ते में दोनों ओर जहां देखो वहां स्तूप, विहार तथा भगवान गौतम बुद्ध की भव्य मूर्तियां। भगवान बुद्ध भारत में जन्मे, बर्मा कभी आये नहीं, फिर भी उनकी ऐसी कौन-सी विशेषता है जो यहां की जनता की रग-रग में रच-बस गयी है? यही प्रश्न मेरे युवा मानस में बार-बार उठने लगा।

उत्तुंग पर्वत शिखर की तराई में स्थित मौलमीन कॉलेज और उसके समीप ही ''टौ हांई फया'' अर्थात **''पर्वतवृत्त विहार पगोडा''**। एक दिन मैं अपने मित्रों के साथ वहां पहुँचा। स्तूप, विहार, बुद्ध-प्रतिमाएं तथा वहां की संपूर्ण कलाकृति देख कर मन में दो प्रकार के विचार उठे-- प्रथम यह कि व्यर्थ का अपव्यय करके अकर्मण्य लोगों के रहने का आश्रय-स्थल के सिवाय यहां और क्या

है? परंतु तत्क्षण यही विचार फिर बिजली के समान कौंधा कि भारत का वह बुद्ध संत बर्मा-वासियों को इतना भा क्यों गया? इतना पूजनीय कैसे बन गया? कोई छोटी-मोटी बात तो इनको इतनी भव्य इमारतें, गुफाएं, विहार, स्तूप आदि बनाने के लिए प्रेरित नहीं कर सकती थी। बारह विद्यार्थियों की हमारी मित्र-मंडली पूरा तनासरिन छिरा घूम आयी। जहां गये वहीं स्तूप, विहार एवं बुद्ध की भव्य प्रतिमाएं। बुद्ध की जो भव्य प्रतिमा मेरे गांव में थी उसकी अपूर्व प्रशांति मन में घर कर चुकी थी, फिर भी रूढ़िवादिता के कारण मेरा मन आर्य संस्कृति के हवन-पूजन, वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत के सामने बुद्ध की शिक्षा को तुच्छ और हेय ही मानता रहा।

उत्तरी बर्मा का तो कहना ही क्या? बर्मा सचमुच स्तूपों और विहारों का देश है। एक बार हम लोग अपने विभाग के सभी विद्यार्थी मौलमीन से सालवीन नदी के मुहाने पर स्थित 'बीलू द्वीप' पर पर्यटन के लिए गये। प्राकृतिक सौंदर्य का अपार भंडार, समुद्र के बीच वह द्वीप भी उन्हीं स्तूपों, विहारों तथा बुद्ध प्रतिमाओं से जगमगा रहा था। जहां गया वहीं भव्य आतिथ्य, मानो उन गृहस्थों के लिए अतिथि भगवान ही हो। इनका आतिथ्य भी कितना निर्विकार, स्नेहिल, सद्भावनापूर्ण, निश्छल एवं निष्कपट है। मेरा खोजी मन फिर इसी उधेड़-बुन में लग गया कि बुद्ध में कुछ विशेष बात अवश्य रही होगी, जिसे समुद्री द्वीप पर बसे मोन जाति के लोग भी इतने करीब से जानते हैं और हम समीप रह कर भी कितने अनभिज्ञ हैं?

मौलमीन रहते हुए जब भी पास वाले गांव के ल्हाश्वे परिवार के घर जाता, वह तुरंत अपनी पत्नी को संबोधित करता-- 'सुनती हो! कॉलेजियन विद्यार्थी आया है-- केला लाना, सादा चाय लाना, पान की मंजूषा लाना आदि-आदि। छोटा-सा गोल टेबल, उसके चारों ओर जमीन पर बिछी चटाई। उसी पर बैठ कर हम स्वल्पाहार करते। शुद्ध शाकाहारी आतिथ्य। यह बात केवल ल्हाश्वे करता हो सो नहीं। चाहे जिसके घर जाओ, वही आतिथ्य करके अपने आपको धन्य मानता। फिर केवल मेरा ही सत्कार होता तो कहता कि शायद मैं कॉलेजियन हूं। नहीं, आगंतुक कोई भी उनके घर पहुँच जाय, उसकी आवभगत वे समान रूप से करते थे। यदि कभी रात्रि को ठहरना पड़ा तो क्या मजाल कि अपने उपयोग का बिस्तर आप को दें। उनके यहां मेहमानों के लिए अलग से बिस्तर, तकिया, चटाई आदि लपेट कर सदा तैयार ऊपर टँगा हुआ रखा रहता। यह मात्र एक स्थान विशेष की बात नहीं, बल्कि संपूर्ण देश के सामान्य गरीब ग्रामीण गृहस्थों तक की यही रीति थी। मैं जहां गया- विशेषकर गांवों में, यही संस्कृति, यही सभ्यता देखी। क्या यह संस्कृति बुद्ध-शिक्षा की ही उपज नहीं है? यही प्रश्न मेरे मन-मानस को भीतर ही भीतर कुरेदता रहता था।

मौलमीन कॉलेज में दो वर्ष रहा। उसके बाद रंगून विश्व विद्यालय में दाखिला हुआ। अब तक पूर्ण 'आर्य समाजी' बन गया था। प्रति रविवार आर्य समाज मंदिर में जाना, वहां हवन-यज्ञ करना, आर्य समाजी भजन गाना, व्याख्यान माला में भाग लेना (अब तक 'साहित्य रत्न' भी पूरा कर चुका था), साहित्य गोष्ठियों में जाना, रंगून के लब्ध-प्रतिष्ठ सत्पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करना, ''आर्य युवक जागृति'' पत्रिका की सेवा करना, आदि कार्यों ने मुझे अध्यात्म के क्षेत्र में अध्ययनशील और कर्मठ बना दिया था। यहां भी विश्व विख्यात **श्वेडगोन पगोडा**, रंगून नगर के मध्य में स्थित **सुले फया पगोडा**, **विश्व शांति पगोडा**- जहां छठा संगायन हुआ था, रंगून के अंचल में स्थित अनेक बड़े-बड़े **बुद्ध विहार** आदि की कला-कृतियों और धार्मिक प्रतिष्ठानों को देख कर जहां मन ''बुद्ध'' के प्रति आदर एवं श्रद्धा से नतमस्तक होता, वहीं दूसरी ओर भीतर ही भीतर मेरा अहं सिर उठाता कि जो भी हो; आर्य संस्कृति, आर्य धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है; हिंदू धर्म ही जगत-गुरु है आदि-आदि। क्योंकि मेरे अंतर्मन में यह बात घर कर गई थी-- 'कहां यह सामान्य बौद्ध धर्म और कहां मेरे महान हिंदू धर्म वाली आर्य संस्कृति!' लेकिन हवन यज्ञ से, मंत्रोच्चार के साथ हविषा को अग्नि में समर्पित करने से, मेरा अंतर्मन संतुष्ट होता हो, यह बात भी नहीं थी। भीतर झांक कर देखता तो पाता कि मन मानस में उतना ही कल्मष है, उतनी ही कालिमा है।

हमारी संस्कृति और व्यवसाय

जियावाडी और चौतगा में कुल मिला कर २५-३० हजार भारतीय १८८५ ई० से ही वहां बसे हैं। इन दोनों स्थलों को छोड़ कर शेष ब्रह्म देश में भी भारतीयों की संख्या कोई कम नहीं थी। परंतु सभी भारतीय मूल के प्रवासी एक बात में समान थे कि ''धनोपार्जन करना है''। जियावाडी और चौतगा के लोग मुख्यतः कृषक थे। लेकिन चाहे कृषक हों या नगरवासी व्यापारी, उनको अपने धंधे से ही सरोकार था। बर्मी सभ्यता एवं संस्कृति के बारे में सोच-विचार करना उनके लिए निकम्मी बात थी। कतिपय भारतीय अपवाद स्वरूप भी थे परंतु सामान्य रूप से वे भी उदासीन ही थे। बस चिंतन-मनन किया या बुद्धि-विलास कर लिया। हमारी पीढ़ी ने शिक्षा के क्षेत्र में अतिशय उन्नति की और सभी की इच्छा यही कि डाक्टर या इंजीनियर बनें। मेरे अपने समय का या इससे पूर्व (१९६४) का एक भी विद्यार्थी ऐसा नहीं मिलेगा जिसने बर्मी साहित्य पढ़ने में रुचि दिखाई हो। एक भी छात्र/छात्रा नहीं जिसने बर्मा का धार्मिक या पालि साहित्य लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का प्रयास किया हो। मैं स्वयं भी उन्हीं में से हूं। मैंने जीव-विज्ञान लेकर बी.एस.सी. किया लेकिन मेडिकल में प्रवेश नहीं मिला, अन्यथा डाक्टर बनने की तमन्ना थी। मेरी न कभी पालि साहित्य पढ़ने की इच्छा हुई और न बुद्ध-शिक्षा अपनाने की। ऐसे में वहां रहते हुए जब यह अफवाह सुनाई दी कि भारतीय समाज के लब्ध-प्रतिष्ठ शीर्षस्थ नेताओं में से एक माननीय श्री सत्यनारायण गोयन्का जी बौद्ध हो गये हैं, तो उनके तथाकथित बौद्ध होने की बात सुन कर मन में बड़ी पीड़ा हुई। मैं माननीय श्री गोयन्का जी को छठवीं कक्षा से सुनते आया था। और यह भी कि ''यदि बर्मा में किसी पर लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों एक साथ प्रसन्न हैं तो वे हैं श्री सत्यनारायण जी गोयन्का''-- यह विरुद (कथन) पूरे बर्मा में प्रचलित था। संयोग से एक बार रंगून आने पर उनके घर गया तब देखा कि उनके बौद्ध होने की सारी बातें निरर्थक हैं। वे मुझे सच्चे सनातनी भारतीय ही लगे। मुझे श्री गोयन्का जी प्रथम दर्शन में ही देवोपम लगे थे। यद्यपि तब तक मैं नहीं जानता था कि वास्तविक धर्म क्या है?

सद्धर्म से संयोग

राजनैतिक विडंबना कहिये या अप्रत्याशित घटना। उस स्वर्ण-भूमि के विछोह को सहना पड़ा, उसे त्यागना पड़ा। छूट गयी शस्यश्यामला प्यारी जन्म-भूमि। २२ नवंबर १९७० को भारत आया। सौभाग्य मानूंगा कि कुछ अतिशय दुःखद घटनाओं ने मुझे भारत आने के तीन, सवा तीन माह बाद ही १ मार्च १९७१ को विपश्यना साधना में शामिल होने की परिस्थिति पैदा कर दी। श्री सत्यनारायण गोयन्का जी तो १९६९ में ही बर्मा से भारत आ चुके थे। उनके द्वारा संचालित २८ वां शिविर मुंबई की नेमानी बाड़ी धर्मशाला में लगा था। विपश्यना साधना के इस १० दिवसीय शिविर में से गुजरना मेरे जीवन का अद्भुत अनुभव रहा। मेरी कायापलट हो गयी, मैं निहाल हो गया। अब सही माने में समझा कि आर्य संस्कृति क्या होती है। अपने सभी प्रश्नों का सही माने में उत्तर पा लिया था। इस शिविर ने मुझे सचमुच आर्य बना दिया। मैं विकार विमुक्त तो नहीं हुआ लेकिन विकारों से मुक्त होने का एक पथ पाया था, एक विधि पायी थी।

अब तक स्थितप्रज्ञता की बातें केवल किताबों में पढ़ा करता था। अनासक्त होने के बारे में ग्रंथ पढ़ता था, कैवल्य ज्ञान के संबंध में चर्चा करता था, वेद-उपनिषद के ऋषियों की ऋचायें पढ़ी थीं। लेकिन इन सब ने केवल सिद्धांत दिया था, बौद्धिक दर्शन दिया था। उसने धर्म के

सैद्धांतिक पक्ष को एक हद तक उजागर भी किया था, इसका अवमूल्यन नहीं करता। परंतु कोई व्यक्ति विकारों से मुक्त होकर स्थितप्रज्ञ होने की विधि भी सिखाता है, इसी जीवन में धर्म के व्यावहारिक पक्ष को भी उजागर करता है; यह बात कल्पनातीत थी। राग, द्वेष, मात्सर्य से भरा हुआ मानस लिए विकारों से ग्रसित एवं दुःखी था। पहली बार अनुभव किया कि सौ में से एकाध प्रतिशत तो छुटकारा पाया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि एक विधि हाथ लग गयी। इस विधि पर चल कर क्रमशः सौ-में-से-सौ प्रतिशत विकार मुक्त हुआ जा सकता है, यह दृढ़ता जागी। प्रश्नों के घूंघट के पट खुल गये।

सम्राट अशोक और गुरु-शिष्य परंपरा

प्रियदर्शी अशोक के गुरुदेव महामोग्गलिपुत्ततिस्स थेर ने ब्रह्मदेश में सोण और उत्तर दो अरहंत भिक्षुओं (थेरों) को भेजा था। उन दोनों संतों ने उस सुवर्णभूमि में विपश्यना की विधि का सम्यक रूप से बीज-वपन किया था जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी तेईस सौ वर्षों तक पनपता रहा, पल्लवित, पुष्पित और फलित होता रहा। गुरु-शिष्य परम्परा से भदंत लैडी सयाडो तक जीवित रहा। फिर उन्हीं की कृपा से यह विपश्यना विद्या गृहस्थ आचार्य सया तै जी और आचार्य सयाजी ऊ बा खिन को मिली और उनसे पूज्य गुरुदेव श्री सत्यनारायण गोयन्का जी को। अब यह सारे संसार के दुःखियारे लोगों का कल्याण कर रही है। केवल प्रवचनों या धर्म-उपदेशों ने बर्मी जनता को नहीं बदला। इससे बदल भी नहीं सकता था। बदला धर्म के व्यावहारिक पक्ष ने, अनुभवजन्य ज्ञान ने। बर्मा ही क्यों संपूर्ण एशिया के देशों को बदल डाला। जिसे भारतीय संस्कृति कह कर मेरा मन संकुचित हुआ था अब समझा कि यही तो मानव धर्म था। सार्वजनीन, सार्वदेशिक, सार्वकालिक धर्म था। इसे जो धारण करे वही सुख-शांति पाये, निहाल हो जाय।

इस शिविर ने मेरे जीवन को आमूल चूल परिवर्तित कर दिया। अब माननीय श्री गोयन्का जी मेरे लिए पूज्य गुरुदेव थे। पहली बार मेरे मन में अपने समस्त शिक्षा-गुरुओं के प्रति, मित्रों के प्रति, बर्मा-वासियों के प्रति कृतज्ञता का भाव जागृत हुआ था। अहं का सहस्त्रांश ही पिघला था फिर भी जो प्रश्न बर्मा में रहते हुए मेरे मन में जागृत हुए थे, यहां उन सब का समाधान मिल गया था। उस देश के प्रति जो स्नेह, प्यार, आदर अब भारत आकर उमड़ा वह वहां रहते हुए कभी नहीं उमड़ा था। उसे छोड़ चुकने के कारण नहीं, बल्कि सही माने में भारतीय अध्यात्म जगत और वस्तुतः समस्त जीव-जगत के सर्वश्रेष्ठ संत गौतम बुद्ध और उनके सिखावन को आचरित कर बर्मा वासियों में जो परिवर्तन आया था, उसे अनुभव करके जानने के कारण। उसे स्वयं चखने के कारण।

बर्मा वासियों की रग-रग में जो शील सदाचार है- मन को वश में करने की जो विधि है; चित्त को निर्मल करने की जो विद्या है, भले थोड़े-से लोगों में ही थी (शेष कर्म-कांडी हो गये थे), वह समझ में आयी। बुद्ध ने जो सिखाया वह मात्र शील-सदाचार का कोरा उपदेश नहीं था। वह तो अपने साढ़े तीन हाथ की काया में अनुभूति के स्तर पर मन को वश में करते हुए उसे नितांत निर्मल करने की विधा थी, विद्या थी जो हर तबके के लोगों का काया-पलट करती हुई; उनके हाड़-मांस में रच-बस गई है। अब समझ में आया कि स्वर्ण भूमि की सामान्य ग्रामीण जनता ने किन बातों से प्रेरित होकर गांव-गांव में विहार, गुफाएं और चैत्य निर्मित किये हैं। बुद्ध ने जो व्यावहारिक धर्म सिखाया था उसे अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी अनुभूति के स्तर पर जीवन में उतार सकता है। इसी करुणा से प्रेरित उस भिक्षुप्रवर ने सातवीं कक्षा के मेरे जैसे छात्र को अध्ययन करने के लिए वह कक्ष दे दिया जिसमें वे स्वयं ध्यान करते थे। वे छुआ-छूत को मानने वाले कोई महंत नहीं; बल्कि शील, समाधि, प्रज्ञा को जानने वाले धर्मप्राण भिक्षु थे। उनके मन में केवल करुणा थी। अब समझा उनके आतिथ्य सत्कार को, सद्भाव और स्नेह को। बात-बात पर उनकी जुबान कर ''अनिस्सा, फया'' मुखरित होता था। अनिस्सा यानी अनिच्च, अनित्य। ठोकर लगी तो उनके मुँह से ''अनिस्सा''- अनित्य है, यही शब्द निकलता था। यह सदियों से उनके मन-मानस के अंतराल में बस गया है। उस प्रकार के अरहंतों से वह स्वर्ण भूमि हमेशा फलती-फूलती रही है। वहां की जनता ऐसे लोगों को देखते आ रही है। प्रत्यक्षतः ऐसे अरहंत संत वहां रहे हैं जो सचमुच अनासक्त और स्थित-प्रज्ञ का जीवन जीते रहे हैं।

वहां की जनता का भोलापन समझा, उनकी संतुष्टि का राज समझा। समझा उनकी समता एवं जीवन के प्रति साक्षीभाव को। अरे भाई, उनको ज्ञात है- **''सब्बे सङ्खारा वयधम्मा''**, सभी संस्कार व्यय धर्मा है। उत्पन्न होना नष्ट हो जाना, उत्पाद होना व्यय हो जाना, यही ध्रुव धर्म है। फिर इसके प्रति चिपकाव क्यों! यह उनके लिए अनुभवजन्य है, भले थोड़े लोग यंत्रवत ही बोलते हों परंतु यह सैद्धांतिक धर्म भी उनमें भीतर तक स्थित है। उनके लिए यह दर्शन शास्त्र और बुद्धिविलास का विषय नहीं है। वहां की आम जनता का जन-मानस किसी की उन्नति से ईर्ष्या नहीं करता। वह समतापूर्ण जीवन जीता है। उसके लिए जीवन में समग्र रूप से संतोष है। जितना है उतने में संतुष्ट हैं। यह उत्कृष्ट संस्कृति मूलतः भारत की बुद्ध-परंपरा की उपज है जो मानव मात्र के लिए उपयोगी है। इसको उस पड़ोसी देश ने दो-ढ़ाई हजार वर्षों से संभाल कर रखा। केवल सैद्धांतिक पक्ष यानी, परियत्ति ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक पक्ष पटिपत्ति को भी संभाल कर रखा।

भारत के आध्यात्मिक जगत और राजनीति का जो स्वर्ण युग कहलाता है - वह सम्राट अशोक के पूर्व के कुछ सौ वर्ष तथा उसके पश्चात के कुछ वर्षों का इतिहास है। यदि भारत के इतिहास से उक्त पांच-सात सौ वर्ष निकाल दिये जायँ तो न भारत जगतगुरु कहलायेगा और न ही उसका स्वर्णिम इतिहास उजागर होगा। यही तो संपूर्ण विश्व की सांस्कृतिक धरोहर है, विरासत है, विश्व धरोहर है। बुद्ध वाणी को पालि साहित्य कहते हैं। यह पालि भाषा में है। बर्मा की धर्म भाषा भी पालि है। पालि का आधार प्राप्त करके बर्मी लिपि में वह सारी वाणी भरी पड़ी है।

पूज्य गुरुदेव ने गुरुवर सयाजी ऊ बा खिन के चरणों में १४ वर्षों तक बैठ कर जिस भारतीय धरोहर का व्यावहारिक अनुशीलन किया, वह आज के विश्व के लिए कितनी प्रासंगिक है, यह विगत २७-२८ वर्षों में प्रमाणित हो चुका है। मैं भी अपने पूज्य गुरुवर के सान्निध्य में लगभग २६ वर्षों से विपश्यना का अभ्यास करते आ रहा हूं। उन्होंने मुझे जो सत्साहित्य पढ़ने तथा अनुवाद करने के लिए दिया, उनमें से कतिपय बर्मी शास्त्रीय ग्रंथ भी हैं। उनमें से थोड़े से साहित्य का अनुवाद ही यह प्रमाणित करता है कि संपूर्ण बर्मी साहित्य में भारत का अतीत, उसका भूगोल, उसके नगर, उसकी कहानियां और उसका उत्कृष्ट अध्यात्म प्रामाणिक रूप से संभाल कर रखा गया है। भारत तथा बर्मा का प्राचीन ऐतिहासिक संबंध कितना सुदृढ़ रहा है, घनिष्ठ रहा है, यह सारा कुछ उजागर होने लगता है।

यह विद्या प्राप्त करके तथा ऐसे संस्थान में सेवा प्रदान करके मैं धन्य हुआ। मेरा मानव जीवन सार्थक हुआ। इस विद्या के प्रचार प्रसार से संपूर्ण मानवजाति का मंगल हो, यही धर्म कामना है!

राम अवध वर्मा,
मार्च, १९९७

*(दिवंगत विपश्यना आचार्य श्री वर्माजी ने **'विपश्यना विशोधन विन्यास'** में सेवा देते हुए लगभग ६५ छोटी-बड़ी पुस्तकों एवं अनेक पत्रकों, यात्रा-विवरणों और लेखों आदि का बरमी से हिंदी में अनुवाद करके स्वयं टंकित किया, जो यहां के शोध-विभाग तथा अन्य अनेक लोगों के लाभार्थ बहुत उपयोगी हैं।)*

Registered No. NSK/235/2015-2017

WPP Postal License No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017

केंद्र सूचनाएं

धम्म अजन्ता, औरंगाबाद

औरंगाबाद में खेतों के बीच १४.५ एकड़ भूमि पर निम्न पते पर लगभग ९० साधकों के लिए एकाकी निवास के साथ सुदर्शनीय सुव्यस्थित ढंग से (well planned) नये केंद्र का निर्माणकार्य संपन्न हो चुका है।

अजन्ता इंटरनेशनल विपश्यना समिति सेंटर, गट नं. ४५, रामपुरी, औरंगाबाद, (२० किमी. वीजापुर-नाशिक रोड)। **कार्यालय**-- २, सुराना नगर, राजहंश भवन, जालना रोड (एयरपोर्ट रोड), औरंगाबाद-४३१००३. मो. ९४२२२-११३४४, ९९२१८-१७४३०, ईमेल- info@dhammaajanta.org; online booking- www.dhammaajanta.org (बिना बुकिंग प्रवेश नहीं।)

पगोडा का निर्माणकार्य, धम्म विपुल, नवी मुंबई

धम्म विपुल, नवी मुंबई में १०-दिवसीय एवं ३-दिवसीय शिविर नियमित चलने लगे हैं। अब १३० शून्यागारों सहित पगोडा का निर्माणकार्य प्रगति पर है। इसके अतिरिक्त सुदर्शनीय बाग-बगीचे, भ्रमण-पथ सीमा-दीवाल आदि कार्य करने हैं। पुण्यार्जन के इच्छुक व्यक्ति संपर्क करें-- सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट, धम्म विपुल सेविंग अकाउंट नं. ९११०१००५०६१६५२१, ऐक्सिस बैंक, नेरुळ शाखा, नवी मुंबई. **संपर्क**- श्री प्रवीण कातपाटल- ०९८६७७७६८८८.

पालि प्रशिक्षण कार्यक्रम, वि. वि. वि., ग्लोबल पगोडा, मुंबई

⇨ पालि-अंग्रेजी सघन निवासीय पाठ्यक्रम -- २५ मई से ९ अगस्त, २०१५.

⇨ अनुवाद-कार्य के लिए कार्यशाला -- १० से १७ अगस्त। **भाग लेने की पात्रता** (योग्यता)--

अ) जिन्होंने कम-से-कम **तीन** १०-दिवसीय एवं **एक** सतिपट्ठान शिविर किया हो।

ब) स्नातक डिग्री या १५ वर्ष तक स्कूली पाठ्यक्रम पूरा किया हो।

संपर्क-- ईमेल- mumbai@vridhamma.org; फोन- +91-22-33747560.

नये उत्तरदायित्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री जयपालसिंह तोमर, बुलढाना
२. श्री मंगल तामगाडगे, नागपुर
३. श्री दामोदरन वी. कुमार, पुणे
४. श्री वी. नरेंद्र रेड्डी, हैदराबाद
५. श्री एम. विष्णुवर्धनराव, विजयवाडा
६. श्री जी. रघुरामाकुमार, हैदराबाद
७. श्री एम. आर. मुथुसामी, इरोड

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

1-2. Mr. Daisuke & Mrs. Shoko sato, Japan;
3-4. Mr. Sophoan Sok & Mrs. Sambo Tey, Cambodia
5. Ms. Xian Jun Tang, China

बालशिविर शिक्षक

१. श्रीमती सुमन यादव, फिरोजाबाद, उ.प्र.
२. कु. प्रतिभा मौर्या, वाराणसी
३. श्री विवेक पाल, दिल्ली *(यह नाम भूल से जनवरी में श्रीमती विवेक पाल छप गया था, कृपया सुधार कर पढ़े.)*
4. Mr. Sun Huijun, China
5. Ms. Xu Bing, China
6. Mr. Xie Dongjian, China

आगामी बुद्ध पूर्णिमा के उपलक्ष्य में एक-दिवसीय महाशिविर

3 मई 2015, रविवार को 'ग्लोबल विपश्यना पगोडा' में पूज्य माताजी के सान्निध्य में एक दिवसीय महाशिविर होगा। शिविर-समयः प्रातः **11** बजे से अपराह्न **4** बजे तक. 3 बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें और **समग्गानं तपोसुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **संपर्कः** 022-28451170 022-337475-01/43/44- Extn. 9, **(फोन बुकिंग : 11** से **5** बजे तक, प्रतिदिन) **Online Regn.: www.oneday.globalpagoda.org**

दोहे धर्म के

चार सत्य हैं जगत के, इनसे मुख मत मोड़।
यही मार्ग है मुक्ति का, आश परायी छोड़॥

आठ अंग हैं धरम के, दूर करें भव-व्याधि।
तीन भाग में बँट रहे, प्रज्ञा शील समाधि॥

दुःख-मूल उत्खनन की, पायी जिसने राह।
वही हुआ सुख-शांति का, सच्चा शाहंशाह॥

कोरे बुद्धि-विलास से, होय नहीं कल्याण।
आर्य-पंथ पर जब चले, तब पाए निर्वाण॥

बैठ पालथी मार कर, काया सीधी राख।
मौन मौन मन मौन कर, चाख धरम रस चाख॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड

८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोनः 2493 8893, फैक्सः 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

नैण-नक्स रै रूप स्यूं, आर्य हुयो ना कोय।
अंतरमन निरमळ हुयो, आर्य कहीजै सोय॥

कूड़-कपट जाणै नहीं, क्रोध न फटकै पास।
उण मिनखां रै अंग मँह, करै देवता वास॥

छळ जाणै ना छदम ही, ना बाणी कड़वास।
उण संतां रै साथ नित, करै देवता वास॥

ज्यूं छायोड़ै ठांव मँह, बिरखा जळ ना आय।
त्यूं साध्योड़ै चित्त मँह, राग द्वेस ना आय॥

जनम जनम रै पाप रो, भार रह्यो चित ढोय।
जितना उतरै लेवड़ा, उतनो हळको होय॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी

सर्वो स्टॉकिस्ट - इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७ मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: **morolium_jal@yahoo.co.in**
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-422 403, दूरभाष : (02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, 69- बी रोड, सातपुर, नाशिक-422 007. **बुद्धवर्ष 2558, चैत्र पूर्णिमा, 4 अप्रेल, 2015**

वार्षिक शुल्क रु. **30/-,** US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **500/-,** US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Registered No. NSK/235/2015-2017**

WPP Postal Licence No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086, 243712, 243238. **फैक्स :** (02553) 244176
Email: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org